गांधी की दृष्टि में अस्पृश्यता

आधुनिक भारत में सवर्ण वर्ग के सामाजिक और राजनीतिक सुधारकों में गांधी ही ऐसे प्रथम व्यक्ति थे, जो अस्पृश्यता को न केवल हिंदू धर्म पर एक कलंक मानते थे, बल्कि इस ऊँच-नीच की दीवार को जड़ से समाप्त करना भी चाहते थे। गांधी की दृष्टि में अस्पृश्यता 'एक सौ सिर वाला दैत्य' था।[1] उनकी मान्यता थी कि इस कलंकित रूप के कारण ही समाज के एक वर्ग को अपने पास तक फटकने नहीं दिया जाता और कुछ की छाया लगने से ही छूत लग लाती है।[2] यह एक ऐसी कलंक-कालिमा है, जो जन्म के साथ ही लग जाती है और लाख बार धोओ, छूटती नहीं है। यह बुद्धि और सदाचार की विरोधी है।[3] उनकी दृष्टि में, 'अस्पृश्यता हिंदू धर्म के सुंदर उपवन में उग आए अवांछनीय घास-पात की तरह है, जो इस तरह फैलती जा रही है कि इसके कारण इस उपवन के सुंदर फूलों के मुरझाने का खतरा पैदा हो गया है।'[4] यही कारण था कि गांधी अस्पृश्यता को हिंदू धर्म पर कलंक तो मानते थे परंतु 'हिंदू धर्म का अभिन्न अंग नहीं मानते थे'।[5] वास्तव में, गांधी अंत्यजों की दयनीय स्थिति के लिए सवर्ण हिंदुओं को दोषी मानते थे। इसलिए वह कहते है, 'साम्राज्यवादी सरकार ने जैसे डायरशाही हम पर चलाई, वैसी ही डायरशाही हिंदू धर्म के नाम पर सवर्ण हिंदुओं ने भंगी जातियों पर चलाई है।'[6] यही कारण है कि गांधी ने यह स्पष्ट कहा है, 'मैं अस्पृश्यों का समर्थन इसलिए करता हूँ क्योंकि हमने उनके साथ घोर अन्याय किया है।'[7]

गांधी की दृष्टि में वर्तमान अस्पृश्यता की उत्पत्ति हिंदू धर्म के क्रमिक विकास की उस अवस्था में हुई जब गाय की रक्षा करना हिंदू धर्म का एक अंग बन गया और गाय को गौ-माता कहा जाने लगा। इस काल में सामाजिक नियम बहुत कठोरता के साथ लागू किए जाते थे। उस समय कुछ लोग ऐसे थे, जो अधिक सभ्य नहीं थे और गौ-मांस खाते रहे। इसी कारण से उन्हें समाज से तिरस्कृत कर दिया गया और वे तब से अस्पृश्य माने जाने लगे। फिर यह पिता से पुत्र को पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होता रहा।[8] वास्तविकता यह है कि अस्पृश्यता की उत्पति के विषय पर गांधी का कोई शोध कार्य नहीं था गांधी ने स्वयं कहा है, 'अस्पृश्यता की उत्पत्ति कब हुई, इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है, मैंने भी सिर्फ़ अनुमान ही लगाया है और वह सच या झूठ भी हो सकता है। लेकिन एक अंधा भी यह देख सकता है कि यह अधर्म है।'[9] फिर भी वह यह स्वीकार करते हैं, 'इस प्रथा की उत्पत्ति अवनति के दिनों में कुछ काल के लिए अपधर्म के रूप में हुई।'[10] दूसरे शब्दों में गांधी का यह मानना था, 'हिंदू धर्म की अवनति की किसी अवस्था में भ्रष्टाचार आ गया और ऊँच-नीच की भावना ने इसमें प्रवेश करके इसे दूषित बना दिया, तब अस्पृश्यता की उत्पत्ति हुई।'[11] उनके दृष्टिकोण में, यह प्रथा हमारे बीच धर्म के नाम पर आई और हिंदू धर्म में प्रविष्ट हो गई[12] और इसका संबंध घृणा से रहा है।[13] लेकिन इसका मूल आधार धर्म में नहीं है, बल्कि उच्चता के झूठे अहंकार ने इसे जन्म दिया है। अर्थात अपने से दुर्बलों को अपने पैरों तले दबाकर रखने की मनोवृत्ति से अस्पृश्यता पैदा हुई है। यह इतनी लंबी अवधि तक इसलिए बरकरार है क्योंकि हमने उन्हें समाज में घुलने-मिलने नहीं दिया है।[14]

गांधी की दृष्टि में हिंदू धर्मशास्त्रों में तीन प्रकार की अस्पृश्यता का उल्लेख मिलता है: 'प्रथम, जन्म से अस्पृश्य अथवा शूद्र पुरुष और ब्राह्मण स्त्री से पैदा होने वाली संतान, द्वितीय, शास्त्र निषिद्ध कार्य करने वाले लोग और तृतीय, अशुद्ध दशा में रहने वाले लोग। गांधी के मत में प्रथम श्रेणी में आने वाले अस्पृश्य आज नहीं मिलते। यदि किसी जाति को इस श्रेणी का मान भी लिया जाए तो वे शुद्ध रहन-सहन से अस्पृश्यता से मुक्त हो जाते हैं। द्वितीय श्रेणी में शास्त्र निषिद्ध कृत्य करने वाले लोग उचित प्रायश्चित से शुद्ध हो सकते हैं, फिर उनकी संतान तो अस्पृश्य हो ही नहीं सकती है।'[15] तृतीय श्रेणी के अशुद्ध दशा मैं रहने वाले लोगों के बारे में गांधी की मान्यता है, 'इस तरह की अस्पृश्यता तो स्वच्छता का एक नियम है जो न केवल भारत में बल्कि पूरी दुनिया में विद्यमान है। कोई भी व्यक्ति, चाहे वह वेतनभोगी भंगी हो या माता हो, जब तक गंदा काम करने के बाद स्वच्छ नहीं हो जाते, तब तक वे अस्वच्छ ही रहते हैं। इस प्रकार की अस्पृश्यता को सारा संसार मानता है और यह

स्पृश्यता हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी सभी लोगों के व्यावहारिक जीवन का एक अंग होती है। परंतु जब गंदा कार्य करने के बाद आदमी नहा-धोकर स्वच्छ हो जाता है, तब उसकी अस्पृश्यता भी समाप्त हो जाती है। इस प्रकार की अस्पृश्यता न तो जन्मागत होती है और न ही स्थाई। इस अस्वच्छ स्थिति में प्रत्येक मनुष्य को कभी न कभी अवश्य रहना पडता है। अतः कर्म के समय कुछ देर के लिए पूरी दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति अस्पृश्य हो जाता है, परंतु कर्म के बाद स्वच्छ हो जाने पर उसे अस्पृश्य कहना कहाँ तक उचित है। कर्म के आधार पर किसी को नीच या अस्पृश्य मानना सवर्ण हिंदुओं की पाप दृष्टि है। जब माता अपनी संतान का मल उठाती है; जब डाक्टर हाड़-मांस काटता है तब वे अस्पृश्य होते हैं लेकिन कर्म के बाद उन्हें कोई अस्पृश्य नहीं कहता। इसी तरह मेहतर, नाई, धोबी, चर्मकार आदि कर्म करते समय अस्पृश्य अवश्य हो जाते हैं, लेकिन स्वच्छ होने के बाद उन्हें भी माता और डाक्टर की तरह स्पृश्य क्यों न माना जाए।[16] यही कारण था कि गांधी का यह दृढ़ मत था, 'स्मृतियों और वेदों में जो अस्पृश्यता का उल्लेख है, उसका संबंध जन्म से नहीं बल्कि बाहरी आचरण से है।'[17] इसलिए उन्होंने कहा, 'मनुष्य को जन्म के कारण अस्पृश्य मानने के बदले उसे उसके बाहरी आचरण के कारण अस्पृश्य मानना चाहिए। भीतरी स्वच्छता पर नियंत्रण नहीं हो सकता, परंतु बाहरी स्वच्छता पर नियंत्रण हो सकता है, फिर प्रत्येक सभ्य समाज में यही नियम माना जाता है।'[18] और 'प्रकृति ने भी कोई ऐसा अमिट चिह्न नहीं रखा है जिससे अस्पृश्य अपने बाकी बंधु हिंदुओं से अलग पहचाने जा सकें।'[19] परंतु 'हमने तो एक वर्ग को जन्म से ही अछूत मान लिया, जिसका कोई आधार ही नहीं मिलता।'[20]

गांधी ने गोलमेज सम्मेलन में यह बात स्पष्ट शब्दों में कही कि वे अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन के विरोध में संघर्ष करते हुए मिट जाएँगें, क्योंकि उनके मत में अस्पृश्यता हिंदू धर्म का अंग नहीं थी।

गांधी अस्पृश्यता को हिंदू समाज के विकास में बाधक मानते थे। वह लिखते हैं, 'मैं अपनी निज़ी अनुभव से यह मानता हूँ कि यह अस्पृश्यता जिस रूप में आज स्थापित है, उससे हिंदू समाज की प्रगति रुक जाएगी।'[21] वह कहते हैं, 'कभी-कभी लगता है कि यदि हम चेत न पाये तो हिंदू धर्म का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा।[22] इसका तात्पर्य यह नहीं है कि गांधी अस्पृश्यता को हिंदू धर्म का अंग मानते थे बल्कि उनके अनुसार अस्पृश्यता सत्य, अहिंसा के और धर्म के विरुद्ध था। वह कहते हैं, 'यदि किसी दिन मुझे यह पता चले कि वेद, उपनिषद, भगवदगीता, स्मृतियों और अन्य शास्त्रों में अस्पृश्यता का समर्थन किया गया है, तो दुनिया की ऐसी कोई ताकत नहीं होगी जो मुझे हिंदू धर्म से बाँधकर रख सके। तब मैं हिंदू

धर्म को उसी तरह फेंक दूँगा जिस तरह सड़े हुए सेब को फेंक देते हैं।'[23] वह लिखते हैं, 'यदि एक क्षण के लिए भी मुझे यह विश्वास हो जाए कि हिंदू धर्म मुझसे किसी भी प्राणी को छूने में पाप समझने की आशा करता है, तो मुझे हिंदू कहलाने का हक नहीं रहेगा।'[24] बल्कि गांधी का तो यह विश्वास था कि हिंदू समाज एक दरिया है। उसके गर्भ में समाकर सब कचरा साफ हो जाता है। इसलिए उन्होंने कहा, 'ग्रीस, इटली आदि देशों के लोग भारत में आकर समा गए, उन्हें किसी ने हिंदू नहीं बनाया।'[25] वह कहते हैं, 'मैं सनातनी हिंदू होने के साथ यह दावा करता हूँ कि मुझे शास्त्रों का काफ़ी ज्ञान है और यह सुझाव भी देना का साहस करता हूँ कि अस्पृश्यता का आज जो व्यवहार किया जाता है उसका हिंदू शास्त्रों में न तो कोई विधान है और न ही किसी प्रकार की स्वीकृति है। अर्थात यह हिंदू धर्म की कसौटी पर न तो खरा उतरता है और न ही हिंदू धर्म के अनुकूल हैं। हिंदू धर्म का यह मूल नियम है कि सत्य और अहिंसा के अतिरिक्त सब कुछ क्षणभंगुर है, माया है। इसलिए मेरे विचार में छुआछूत मानवता पर एक कलंक है।'[26] फिर 'जो बुद्धि की कसौटी पर खरा न उतरे उसे अस्वीकार करने में, मैं पीछे नहीं रहता।'[27] वास्तव में, गांधी के दृष्टिकोण में अस्पृश्यता हिंदू धर्म पर बाहरी रूप से लगा हुआ एक ऐसा मैला कपड़ा था जो सड़ चुका था। इसलिए इसे धोने के बदले फेंका जा सकता था। यही कारण था कि उन्होंने अस्पृश्यता को हिंदू धर्म के अंग के रूप में कभी भी स्वीकार नहीं किया।

गांधी ऐसे शास्त्रों को मानने के सर्मथक नहीं थे, जिनमें परिवर्तन या व्याख्या की गुंजाइश ही न हो। इसलिए वह कहते है कि 'हम इस भूल में न पड़ें कि प्राचीनकाल में लिखे गए शास्त्रों की एक-एक बात हमारे लिए बंधनकारी है। जो शास्त्र नैतिकता के सिद्धांतों के विरुद्ध हों, वह चाहे कितने ही पुराने क्यों न हों, शास्त्र नहीं हो सकते।'[28] गांधी के मत में शास्त्रों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक शास्त्र वे हैं जिनमें दर्शन के ऊँचे सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है और जो मनुष्य को आध्यात्मिक विकास का निर्देश देते हैं। दूसरे शास्त्र वे हैं जिनमें सामाजिक अनुशासन के नियम बताए गए हैं और उनकी अवहेलना करने पर दंड देने का विधान दिया गया है।'[29] साथ ही, वह यह भी स्वीकार करते हैं, 'स्मृतियों में कुछ ऐसे संदिग्ध अनुच्छेद अवश्य मिलते हैं, जो एक वर्ग पर कठोर दंड का विधान देते हैं। परंतु उन अनुच्छेदों में भी ऐसा कुछ नहीं दिया गया है कि अस्पृश्यता एक दैवी प्रथा है।'[30] गांधी की दृष्टि में धर्मग्रंथों में छपी बातों को ब्रह्म-वाक्य नहीं कहा जा सकता। उनका मत था कि हर आदमी शास्त्रों के बारे में यह तय नहीं कर सकता कि शास्त्रों का कौन-सा वाक्य प्रामाणिक नहीं है और कौन-सा प्रामाणिक है।

गांधी, बाबासाहब भीमराव अम्बेडकर की तरह यह मानते थे कि कोई ऐसी आधिकारिक संस्था होनी चाहिए जो धर्मग्रंथों के नाम से समस्त साहित्य का पुनर्निरीक्षण करे तथा नैतिक मूल्यों से रहित धर्म तथा आचारनीति के विरुद्ध पड़ने वाले सभी बंधनों को निकाल फेंके और उसके बाद जो शेष रहे, उसका एक संस्करण हिंदुओं के मार्गदर्शन के लिए प्रस्तुत करे। साथ ही उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि यह कार्य से सेवा भाव से किया जाए तो यह निश्चित है कि इससे उन लोगों को बड़ा सहारा मिलेगा, जिन्हें ऐसे सहारे की सख्त जरूरत है।'[31]

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चिंतन की दृष्टि से वर्ण, जातिप्रथा, अस्पृश्यता और हिंदू धर्म की उत्पति और संरचना के सिद्धांतों की अवधारणा को लेकर गांधी और डा. अम्बेडकर के दृष्टिकोणों में भिन्नता होने के बावजूद अनुसूचित जातियों का अस्पृश्यता-निवारण, आर्थिक और राजनीतिक उत्थान के उद्देश्य, दोनों के एक समान थे।

गांधी जहाँ अहिंसक उपायों से 'अंत्योदय से सर्वोदय' की बात करते थे, वहीं डा. अम्बेडकर संवैधानिक उपायों से नीचे के तल पर बैठे हुए व्यक्तियों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उत्थान की बात करते थे। अर्थात दोनों ही विचारक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विषमता की खाई को समाप्त करके समानता लाना चाहते थे। फर्क केवल इतना था कि गांधी की दृष्टि में अस्पृश्य जातियों के उत्पीड़न का कारण धार्मिक और मनोवैज्ञानिक था। इसलिए वह चाहते थे कि सबसे पहले धार्मिक और मनोवैज्ञानिक बाधाओं को दूर करके अस्पृश्यता का अंत किया जाए। अस्पृश्यता-निवारण कैसे किया जाए, इसके लिए जहाँ एक ओर वह अस्पृश्यों को मंदिर प्रवेश के अधिकार से सवर्णों के हृदय परिवर्तन की बात करते थे, वहाँ दूसरी ओर अनुसूचित जातियों के साथ रहकर स्वच्छता, स्वास्थ्य की जानकारी तथा उनके लिए शिक्षा, शुद्ध जल की व्यवस्था से उनके उत्थान की बात करते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि दलितों को जब तक सामाजिक समानता नहीं मिल जाती, तब तक उनका आर्थिक और राजनीतिक उत्थान नहीं हो सकता। दूसरी ओर डा. अम्बेडकर की दृष्टि में उनका उत्थान तब तक संभव नहीं था, जब तक उन्हें नागरिक समानता और राजनीतिक भागीदारी प्राप्त न हो जाए। इसके लिए वे प्रतीकात्मक उपायों के बदले अस्पृश्यता-उन्मूलन के लिए ठोस संस्थागत और स्थाई आधार तैयार करना चाहते थे। इसलिए उनका ज़ोर शिक्षा, नौकरियों और राजनीतिक भागीदारी पर अधिक था। इन्हें प्राप्त करने के लिए वह कानूनी रूप से संवैधानिक उपायों की माँग करते थे।

गांधी की दृष्टि में अस्पृश्य जातियों का उत्थान तब तक संभव नहीं था जब तक अस्पृश्यता-निवारण के कार्यक्रमों को प्रधानता न दी जाए। उनके लिए अस्पृश्यता-

निवारण का अर्थ था, 'सवर्णों की आत्मा से इस कलंक को हटाना'। इसलिए वह एक हरिजन को लिखते हैं, 'मैं अस्पृश्यता के कलंक से अपने को मुक्त करने और पाप का प्रायश्चित करने के लिए ही हरिजन-उत्थान में रुचि लेता हूँ। हरिजनों की उन्नति में बाधा रखने वाले इस कृत्रिम अवरोध के हटने से उनकी नैतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में तेज़ी से सुधार आएगा। अस्पृश्यता-निवारण से हम सभी एक दूसरे के करीब आएँगे और इस प्रकार भारत के विभिन्न समुदायों के बीच हार्दिक एकता पैदा करेंगे।'[32] गांधी की दृष्टि में अस्पृश्यता ही दलितोत्थान के मार्ग में सबसे बड़ा अवरोध था। परंतु वह यह मानते थे कि अस्पृश्यता-निवारण का कार्य सवर्णों का कर्त्तव्य है, क्योंकि अस्पृश्यता की भावना सवर्णों के हृदय में होती है न कि अवर्णों के हृदय में। इसलिए जब अस्पृश्यता का अंत हो जाएगा तब सभी समुदाय आपस में एकता के सूत्र में स्वतः ही बँध जाएँगे। यही कारण था कि गांधी सबसे पहले सवर्णों को कर्त्तव्य का बोध कराना चाहते थे।

गांधी की दृष्टि में अस्पृश्यता का व्यवहार यह है कि सवर्ण लोग अस्पृश्यों से घृणा करते हैं और उन्हें छूना पाप मानते हैं। इसलिए वह कहते हैं, 'अस्पृश्यता को अस्पृश्यों से नहीं, बल्कि उच्चवर्गीय हिंदुओं से हटाया जाना चाहिए क्योंकि सवर्ण लोग ही अस्पृश्यता को मानते हैं।'[33] यही कारण है कि गांधी सवर्ण हिंदुओं से कहते हैं, 'हम अपने किए पर पश्चाताप करें, उन लोगों के प्रति अपना व्यवहार बदले, जिन्हें आज तक हम शैतानियत भरी प्रणाली से दबाते रहे हैं। हमें उनके साथ सगे भाइयों-सा व्यवहार करना चाहिए। हमें उनकी वह विरासत वापस कर देनी चाहिए, जो हमने उनसे छीन ली थी।'[34] इस तरह गांधी की दृष्टि में अस्पृश्यता-निवारण का यह अर्थ था कि सवर्ण लोग उन्हें हेय दृष्टि से न देखें और अपने किए का पश्चाताप करें।

गांधी सवर्णों के इस तर्क को भी नहीं मानते थे कि अस्पृश्य जब शराब पीना, मुर्दा मांस खाना और गंदा रहने की आदत छोड़ देंगें, तब वे भी अस्पृश्यता का व्यवहार छोड देंगे। इस विषय पर गांधी का उत्तर था, 'उनकी इस स्थिति के लिए हम ही ज़िम्मेदार हैं।'[35] हमने ही उनको सुविधाओं से वंचित किया है, जितनी हम उन्हें सुविधाएँ देंगे, उतनी ही वे सफ़ाई से रहेंगे।[36] गांधी सवर्णों के इस तर्क को भी स्वीकार नहीं करते थे कि अवर्णों का शुद्धि संस्कार करके उन्हें सवर्णों में मिलाया जाए। गांधी के मत में, 'हरिजन भी हिंदू समाज के महत्वपूर्ण अंग हैं, इसलिए शुद्धि किसकी और कौन करेगा? शुद्धि तो अंतरात्मा की होनी चाहिए।'[37] वास्तविकता यह है कि गांधी सवर्णों से यह अपेक्षा करते थे कि वे ऊँच-नीच की गलत धारणाओं को मन से निकाल दें और आगे बढ़कर दलित भाइयों को गले लगाकर उनसे अपने पापों

के लिए क्षमा माँगें और भविष्य में ऐसा नहीं करने की कसम खाएँ। तभी अस्पृश्यता के इस कलंक को हम धो पाएँगे। इस प्रकार के उपायों से गांधी सवर्णों के आत्मपरिवर्तन से अस्पृश्यता-निवारण तथा दलितोत्थान करना चाहते थे।

अस्पृश्य जातियों का मंदिर-प्रवेश, गांधी के दृष्टिकोण में, सवर्णों के आत्मपरिवर्तन और दलितों के सामाजिक-सांस्कृतिक उत्थान का कारगर उपाय था। उनके लिए मंदिर-प्रवेश एक आध्यात्मिक कदम था जिससे सभी का उत्थान संभव हो सकता था। डा. अम्बेडकर के एक पत्र के उत्तर में वह लिखते हैं, 'बहुत-से सनातनी हिंदुओं से हरिजनों के विद्यालयों, कुओं और अन्य सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश का सवाल सबसे पहले करता हूँ।'[38] एक अन्य स्थान पर वह कहते हैं, 'मंदिर-प्रवेश के बिना सुधार के सारे उपाय रोग के साथ खिलवाड़ करने जैसे हैं। मंदिरों की आवश्यकता को अस्वीकार करने का मतलब स्वयं ईश्वर, धर्म और भौतिक अस्तित्व की आवश्यकता को अस्वीकार करना होगा।'[39] उनकी दृष्टि में 'मंदिर-प्रवेश ही उन्हें यह विश्वास दिलाएगा कि ईश्वर के समक्ष वे अछूत नहीं हैं।'[40] मंदिर-प्रवेश के बारे में वह कहते हैं, 'जो आज तक यह मानते रहे हैं कि मंदिर केवल सवर्णों के लिए हैं, उनके पूर्वाग्रह को हमें दूर करना चाहिए। हरिजन भाई मंदिर में आएँ, उसके लिए हमें मंदिर के द्वार खोल देने चाहिए। जब हरिजन भाई समझ जाएँगे कि हम उन्हें प्रेम से बुलाना चाहते हैं, तब वे अपने-आप चले आएँगे।'[41]

मंदिर-प्रवेश को गांधी अस्पृश्यों की सामाजिक और आर्थिक उत्थान की कुंजी मानते थे। गांधी के मत में अस्पृश्यों की आर्थिक समस्या का हल तब तक संभव नहीं था, जब तब अन्य लोगों के साथ बराबरी के आधार पर अस्पृश्यों को मंदिर-प्रवेश का अधिकार नहीं मिल जाता। उनकी दृष्टि में अस्पृश्यता-निवारण का कारगर उपाय मंदिर-प्रवेश था और मंदिर-प्रवेश से ही अन्य सुधारों की प्रगति में तेज़ी लाई जा सकती थी। इसी संदर्भ में वह लिखते हैं, 'आप आर्थिक समस्याओं को हल कर भी दें, तो भी उससे हरिजन समस्या हल होने वाली नहीं है, क्योंकि डा. अम्बेडकर आर्थिक और शैक्षिक दृष्टि से हममें से अधिकांश से अच्छे हैं फिर भी माने तो अछूत ही जाते हैं।'[42]

गांधी के मंदिर-प्रवेश का अर्थ यह नहीं था कि इससे दलितों की सभी समस्याओं का हल हो जाएगा बल्कि गांधी का विचार था कि जब मंदिरों के द्वार दलितों के लिए स्वतः खोल दिए जाएँगे तो इससे अस्पृश्यता का निवारण हो जाएगा और जब अस्पृश्यता का निवारण हो जाएगा तो फिर हिंदू और गैरहिंदू का प्रश्न ही नहीं रहेगा। जब ऐसी स्थिति आ जाएगी तब सभी क्षेत्रों में सभी की स्वतंत्र भागीदारी हो जाएगी। दूसरे शब्दों में, गांधी की दृष्टि में धार्मिक समानता के बिना दलितोत्थान का कार्य

संभव नहीं था। क्योंकि उनका यह दृढ़ विश्वास था कि जब तक अस्पृश्यों को मंदिर-प्रवेश का अधिकार नहीं मिल जाता, तब तक अस्पृश्यता का काला दाग उनके शरीर पर लगा रहेगा। यही कारण था कि गांधी के मत में जब तक मंदिर-प्रवेश के संबंध में उन्हें सवर्ण हिंदुओं के बराबर अधिकार और सुविधाएँ नहीं दी जातीं, तब तक उनकी आर्थिक स्थिति में चाहे जितने भी सुधार किया जाएँ, उन्हें सवर्ण हिंदुओं की बराबरी का दर्जा नहीं मिल सकता। मंदिर-प्रवेश को गांधी महत्त्वपूर्ण कार्य तो मानते थे, लेकिन दलितों की माँग पर मंदिरों के द्वार खोलना बहुत बड़े महत्त्व का काम नहीं मानते थे। गांधी का यह कहना था, 'मंदिर-प्रवेश का कार्य ज़ोर-जबरदस्ती से नहीं होना चाहिए। उनकी दृष्टि में यह कार्य सवर्ण हिंदुओं के मत को अनुकूल दिशा देकर ही संपादित किया जाना चाहिए।'[43] परंतु साथ ही उनकी सवर्णों से भी यह अपील थी कि मंदिरों के द्वार अस्पृश्यों के लिए इसलिए खोल देने चाहिए क्योंकि, 'मंदिर बंद करके हमने पाप किया है, इसलिए मंदिरों के द्वारा खोलना अवश्य ही एक धार्मिक पुण्य का कार्य होगा।[44]

गांधी का यह दृढ़ मत था कि अस्पृश्यता का कलंक और अनुसूचित जातियों की दयनीय दशा के लिए सवर्ण हिंदू ही दोषी हैं। यही कारण था कि गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम में सवर्ण हिंदुओं को जागरूक करना एक मुख्य उद्देश्य था। परंतु इसका तात्पर्य यह भी नहीं था कि अस्पृश्य जातियाँ सामाजिक और सांस्कृतिक उत्थान के कार्य में भागीदारी न निभाएँ बल्कि यह कि अस्पृश्यों के सामाजिक और सांस्कृतिक उत्थान में जहाँ एक ओर सवर्णों द्वारा प्रायश्चित के उपाय का तरीका आवश्यक है, वहीं अस्पृश्यों द्वारा अपना आंतरिक और बाहरी सुधार भी आवश्यक है। इसलिए वह लिखते हैं, 'अस्पृश्यों का आंतरिक सुधार और स्पृश्यों द्वारा प्रायश्चित, ये दोनों काम साथ-साथ चलने चाहिए।'[45] गांधी कहते हैं, 'हरिजनों को भी जोश के साथ अपने अंदर सुधार करना चाहिए, जिससे सवर्णों को यह कहने का मौका न मिले कि इन जातियों में अमुक बुराई है।'[46]

वह इन जातियों से यह भी कहते हैं, 'जिसे आप अपना अधिकार मानते हैं, उसके लिए आप हिंदू समाज से शिष्टतापूर्वक अवश्य लड़ें, लेकिन साथ ही हिंदू समाज के नियमों का पालन भी करें और व्यभिचार आदि छोड़कर अपने अंतःकरण को निर्मल बनाएँ।'[47] अवर्णों से उन्होंने यह भी अपील की, 'यदि सवर्ण हिंदू आप लोगों पर अत्याचार करें तो आपको यह समझना चाहिए कि दोष हिंदू धर्म में नहीं है बल्कि उसके अनुयायियों में है।'[48] अर्थात वह इन जातियों से यह अपेक्षा करते थे कि वे कोई ऐसा कार्य नहीं करें जिससे सनातनी वर्ग के लोगों को दुख पहुँचे। गांधी अवर्णों को उसी प्रकार का संदेश देते थे, जैसा कि डा. अम्बेडकर भी कहते थे, 'शिक्षित बनो,

संगठित रहो और संघर्ष करो।' गांधी भी अवर्णों से कहते हैं कि अपनी उन्नति तुम्हें स्वयं करनी है। तुम यह समझ कर मत बैठ जाना कि तुम्हारे भले के लिए जो कुछ ज़रूरी हैं, वह सब सवर्ण हिंदू समाज करेगा। तुम्हें अपनी ताकत दिखानी है। इसलिए जागो और हिंदुओं ने जिन दोषों को लगाकर तुम्हारा त्याग किया है, उन्हें दूर करके दिखाओ तथा अपने अंदर की कमियों को मिटाओ और अपना उत्थान करो।

वास्तव में, गांधी उदारवादियों की तरह मानवीय दुर्बलताओं को स्वीकार करते थे। वह मार्क्स की तरह दो विपरीत दिशाओं वाले संघर्षपूर्ण वर्गों को स्वीकार नहीं करते थे। गांधी की दृष्टि में मानवीय प्रकृति सुधारवादी थी और इसलिए गांधी को आशावादी माना जाता है। उनकी दृष्टि में सवर्ण तथा अवर्णों ने जो गलतियाँ की हैं, उनका सुधार भी वे स्वयं ही कर सकते हैं। गांधी के मत में एक व्यक्ति या वर्ग बहुत अच्छा और दूसरा बहुत बुरा नहीं होता, बल्कि वे यह मानते थे कि एक बहुत अच्छा तथा दूसरा कम अच्छा हो सकता है। परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं था कि कम अच्छे में सुधार नहीं हो सकता बल्कि वह यह मानते थे कि मनुष्य परमात्मा तो नहीं बन सकता, परंतु महात्मा अवश्य बन सकता है। गांधी भी कांट, मिल, ग्रीन और हावहाउस के उस मत को स्वीकार करते थे कि व्यक्ति में सुधार का विषय अंदरूनी होता है, इसलिए उनकी यह मान्यता थी कि किसी भी व्यक्ति या समाज का उत्थान स्वयं उसके नागरिकों के श्रम और व्यवहार पर निर्भर करता है।

गांधी भी डा. अम्बेडकर की तरह यह मानते थे कि उत्थान का कार्य व्यक्ति और समाज की अपनी योग्यता और परिश्रम पर निर्भर करता है। दूसरे शब्दों में, गांधी का यह मत था कि अस्पृश्यता का अंत तब तक संभव नहीं होगा, जब तक सवर्णों की आत्मा में परिवर्तन नहीं आएगा और दलितोत्थान तब तक संभव नहीं होगा, जब तक दलितों में अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूकता नहीं आएगी। यही कारण था कि गांधी सवर्णों और अवर्णों दोनों को उनके कर्त्तव्यों का बोध कराने के लिए जहाँ एक ओर सवर्णों से अपने किए का प्रायश्चित कराने के लिए दलितों के धार्मिक एवं सार्वजनिक स्थलों में प्रवेश एवं उनके इस्तेमाल का अधिकार दिलाने के लिए आंदोलन चलाते रहे, वहीं दूसरी ओर दलितों की स्वच्छता और शिक्षा के लिए संस्थाओं का गठन करते रहे, मदिरा और मांस त्याग करने पर बल देते रहे। यही कारण था कि अस्पृश्यता-निवारण के लिए वह अनुसूचित जातियों को मंदिर-प्रवेश का अधिकार सर्वप्रथम दिलाना चाहते थे।

गांधी के दर्शन का उद्‌गम प्राचीन भारतीय वैदिक अहिंसा, सत्याग्रह की परंपरा और पश्चिमी प्रजातंत्र एवं धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांतों के समन्वय का परिणाम था। इसलिए गांधी का सामाजिक परिवर्तन का दृष्टिकोण मार्क्स की तरह क्रांतिकारी नहीं

था। गांधी सामाजिक असमानताओं को तो स्वीकार करते थे, परंतु समानता लाने का उनका मार्ग सत्याग्रह और अहिंसा द्वारा क्रमिक परिवर्तन पर आधारित था। उनका दृढ़ मत था कि वर्षों से चले आ रहे पूर्वाग्रहों को समाप्त करने की वैज्ञानिक विधि हृदय-परिवर्तन ही हो सकती है। उनकी दृष्टि में अस्पृश्यता-निवारण या दलितोत्थान के प्रश्न को हल करने के लिए सवर्ण हिंदुओं की आत्मा को बदलना ही एकमात्र मार्ग था, चाहे सफलता मिलने में कुछ वर्ष क्यों न लग जाएँ। इसलिए वह कहते हैं, 'यह रोग ऐसा नहीं है जिसका कोई कानूनी इलाज किया जा सके या जिसे संसद के निर्णय से दूर किया जा सके, इसका उपचार तो पूरी दुनिया में इस बात पर निर्भर करता है कि हम अपने हृदय को बदलें।'[49] इसलिए वह लिखते हैं, 'ज़बरदस्ती करने के उपाय पर मेरा तनिक भी विश्वास नहीं है। मैं लोगों को हृदय और बुद्धि के धरातलों पर समझा-बुझाकर उनसे सत्य की अपनी अवधारणा स्वीकार कराने की कोशिश करता हूँ।'[50] उनकी दृष्टि में केवल स्वतंत्र वातावरण में ही हृदयपरिवर्तन संभव था। वह कहते हैं, 'मैं जिस लक्ष्य को लेकर चल रहा हूँ, वह यह है कि हर सवर्ण हिंदू अपने हृदय से अस्पृश्यता की भावना को निकाल ले और इस तरह अपना पूर्ण हृदय-परिवर्तन करें।'[51]

गांधी सवर्णों के हृदय-परिवर्तन के बिना अस्पृश्यता-निवारण का कार्य असंभव मानते थे। वास्तव में, गांधी अनुसूचित जातियों के उत्थान के लिए दो मार्गों पर बल देते थे। प्रथम, अपने पीड़ित भाइयों के बीच में रहकर उनके कष्टों का निवारण करना। दूसरा, उन लोगों के हृदय को बदलना, जो अपने ही भाइयों को अछूत समझने की प्रथा में विश्वास रखते थे। अस्पृश्यता-निवारण और अनुसूचित जातियों का उत्थान, ये दो बातें एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी, गांधी की दृष्टि में एक दूसरे से संबंधित थीं। अनुसूचित जातियों के उत्थान में उनके शैक्षिक, आर्थिक और सामाजिक सुधार की बातें हैं, जबकि अस्पृश्यता-निवारण तब तक संभव नहीं है जब तक सवर्ण इस बात का स्वीकार न कर लें कि किसी व्यक्ति को जन्म के आधार पर छूना पाप नहीं है और जन्म से कोई अपवित्र नहीं हो सकता। गांधी इस बात को भी स्वीकार करते थे कि यह कार्य एक निश्चित समय में किसी भी संत या कानून से संभव नहीं हो सकता। इसका निवारण तभी संभव हो सकता है, जब सवर्णों की आत्मा में परिवर्तन आ जाए। इसलिए गांधी के मत में अस्पृश्यता-निवारण का कार्य क्रमिक परिवर्तन के सिद्धांत पर आधारित है।

गांधी के इस दृष्टिकोण से डा. अम्बेडकर संतुष्ट नहीं थे। डा. अम्बेडकर की दृष्टि में जब तक नागरिक और राजनीतिक अधिकार दलितों को प्राप्त नहीं होंगे तब तक दलितोत्थान का प्रश्न ही नहीं उठता। यही कारण है कि जहाँ गांधी की दृष्टि में

दलितों का उत्थान धार्मिक और मनावैज्ञानिक साधनों से संभव था, वहीं डा. अम्वेडकर की दृष्टि में वह नागरिक और राजनीतिक अधिकारों से संभव था।

अस्पृश्यता की प्रथा कब और कैसे प्रचलित हुई तथा अछूत किसे कहा गया, इस विषय पर नृवैज्ञानिक, समाजविज्ञानी और इतिहासकारों में मतभेद पाया जाता है। परंतु अस्पृश्य जातियों का इतिहास दास, दस्यु और शूद्र के रूप में वैदिक वर्ण व्यवस्था में प्रारंभ हो चुका था। किंतु उस वर्ण व्यवस्था में व्यवसाय अथवा पेशे को ऊँच-नीच की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। व्यक्तिगत योग्यता एवं क्षमता के आधार पर पेशे में परिवर्तन की स्वतंत्रता थी। परंतु वर्ण व्यवस्था ने जातियों का रूप धारण किया और पेशा जन्म के आधार पर निश्चित होने लगा, तब सबसे निम्न कोटि का कार्य करने वाले वर्ग पर अनेक अयोग्यताएँ लाद दी गईं। गांधी और डा. अम्बेडकर दोनों इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। ये अयोग्याताएँ कब लादी गईं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। परंतु ऐसे प्रमाण अवश्य मिलते हैं कि उत्तर वैदिक काल के अंतिम चरण से भारतीय समाज का बुनियादी ढाँचा जन्मजात असमानता पर आधारित अनेक जातियों और उप-जातियों में बँटता रहा। इस उप-विभाजन के कारण ही कुछ समूह सबसे नीचे रहे जिनके उत्पीड़न का दुर्भाग्यपूर्ण इतिहास ही उनकी पहचान है। इनकी अनेक अयोग्याताएँ रही हैं और इतिहास में इन्हें दूर करने के अनेक प्रयास हुए हैं। जैन-बौद्ध काल से लेकर मध्ययुगीन सूफ़ी संतों तथा आधुनिक पुनर्जागरण काल के सामाजिक सुधारवादियों तक किसी को इसमें खास सफलता नहीं मिली।

बीसंवीं शताब्दी के दूसरे दशक में पहली बार महात्मा गांधी और डा. भीमराव अम्बेडकर ने दलितों की समस्याओं के समाधान के लिए न केवल यथार्थवादी दृष्टिकोण से अध्ययन किया बल्कि दोनों ने इन जातियों के उत्थान के लिए आंदोलन भी चलाए, हालाँकि दोनों की सोच और कार्य करने की दिशा अलग-अलग थी। सवर्ण सुधारकों में गांधी ही ऐसे प्रथम व्यक्ति हुए जिन्होंने अस्पृश्यता की भावना को सवर्णों के हृदय में पाया। यही कारण था कि वह इस समस्या के लिए सवर्ण हिंदुओं को दोष देते थे और अस्पृश्यता-निवारण के लिए सवर्ण हिंदुओं के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना चाहते थे। इसी वजह से गांधी इस समस्या का समाधान हिंदू धर्म एवं जाति के ढाँचे के अंदर ही करने के पक्ष में थे क्योंकि वह यह मानते थे कि जिस प्रकार दलितों के लिए भौतिक उत्थान आवश्यक है, उसी प्रकार सवर्ण एवं संपन्न वर्ग के लिए आध्यात्मिक उत्थान आवश्यक है। इसीलिए गांधी अस्पृश्य जातियों का उत्थान सर्वप्रथम धार्मिक और नैतिक दृष्टिकोण से करना चाहते थे, जिससे सवर्ण-अवर्ण का भेदभाव समाप्त हो सके और इन जातियों को राष्ट्रीय एकता एवं सामंजस्य की

धारा में लाया जा सके। उनकी दृष्टि में अस्पृश्य जातियों की समस्या सामाजिक और धार्मिक थी।

दूसरी ओर, डा. भीमराव अम्बेडकर की यह मान्यता थी कि हिंदू धर्म में वर्ण व्यवस्था को समाज का आधार देने वाले सवर्ण हिंदुओं के संपूर्ण धर्मशास्त्र वर्ण भेद पर आधारित हैं। वर्ण व्यवस्था के कारण ही शूद्रों को अछूत माना गया। वर्ण यवस्था में ऊँच-नीच के कारण जाति भेद को प्रोत्साहन मिला और जाति भेद के इस वर्गीकरण के कारण अस्पृश्यता का जन्म हुआ। इसलिए जब तक वर्ण, कर्म, पुनर्जन्म और जाति व्यवस्था पर आधारित हिंदू धर्मशास्त्रों को समूल नष्ट नहीं किया जाता, तब तक अस्पृश्यता से मुक्ति नहीं मिल सकती। इसी कारण डा. अम्बेडकर यह चाहते थे कि दलित जातियों का उत्थान अन्य अल्पसंख्यक वर्गों की तरह नागरिक और राजनीतिक अधिकार देकर संभव बनाया जाए।

अस्पृश्यता-निवारण की रणनीतियों में मतभेद होने के बावजूद गांधी और अम्बेडकर न केवल अछूत मुक्ति के समर्थक थे, बल्कि उनके छीने हुए अधिकार भी वापस दिलाने के पक्षधर थे। अस्पृश्यता-निवारण के संदर्भ में दोनों का लक्ष्य एक ही था और वह था अस्पृश्यों को अस्पृश्यता से मुक्ति दिलाना और उनका सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक उत्थान करना।

अस्पृश्यता उस परंपरागत मनोभाव तथा व्यवहार-प्रतिमान का द्योतक है, जिसके अनुसार पंचम वर्ग के सदस्य छूने योग्य नहीं होते, और उच्च वर्ग द्वारा उनसे सामाजिक दूरी बनाए रखना भी आवश्यक होता है। इसी प्रकार, अस्पृश्य सदस्यों का भी यह कर्त्तव्य माना जाता था कि वे उच्च वर्ग के सदस्यों से दूर रहें। धीरे-धीरे अस्पृश्यता की यह धारणा केवल उच्च या मध्यम जातियों से ही संबद्ध नहीं रही, बल्कि अस्पृश्यों में भी उच्च जातियों द्वारा निम्न जातियों के प्रति भेदभाव का व्यवहार किया जाता था। इसलिए अस्पृश्यता की मनोवृत्ति जाति से नहीं बल्कि परंपरागत रूप से निम्न व्यवसाय, घृणा और पिछड़ेपन के दृष्टिकोण से संबद्ध रही है।[52] इसलिए अस्पृश्य शब्द का अर्थ ही अछूत हुआ।

मनुस्मृति में पंचम वर्ण या अछूत का कोई उल्लेख नहीं हैं। लेकिन मनु यह स्वीकार करते हैं कि प्रतिलोम विवाह अर्थात ब्राह्मण कन्या और शुद्र लड़के से पैदा होने वाली संतान को हिंदू धर्म में वर्ण संकर मानने के कारण चतुर्थ वर्ण से पृथक रखा जाता है।[53] कौटिल्य ने भी वर्ण संकर जातियों को संपत्ति के हिस्से से वंचित रखा है।[54] अस्पृश्यता के कारणों पर प्रकाश डालते हुए जी. एस. धुरिये ने अपनी पुस्तक *जाति, वर्ण और व्यवस्था* में लिखा है कि इंडों-आर्यन लोगों ने यहाँ के मूल निवासियों को दास बनाकर और सबसे नीचा स्थान देकर घृणा का पात्र बनाया तथा

उन्हें अपनी पूजा पद्धतियों से भी दूर रखा। डी. एन. मजूमदार अपनी पुस्तक *रेस और कल्चर* में धुरिये के मत का खंडन करते हुए कहते हैं कि दलित जातियों की अयोग्याताएँ संस्कार से संबंधित नहीं हैं, बल्कि इसका आधार प्रजातीय और सांस्कृतिक भिन्नता है। इन भिन्नताओं के कारण धीरे-धीरे इतनी कटुता हो गई कि कुछ लोगों को छूना ही अनुचित माना जाने लगा और वे अछूत कहलाए। अस्पृश्यता का एक अन्य कारण व्यावसायिक दृष्टिकोण भी माना जाता है। नेसफील्ड का विचार है कि सामाजिक दृष्टिकोण से जो पेशे अपवित्र माने जाते थे उनसे छुआछूत की भावना पैदा हुई। इस तरह के पेशे अपनाने वाले व्यक्तियों और समूहों को अछूत माना जाने लगा। शूद्रों के एक वर्ग के साथ अस्पृश्यता कैसे जुड़ गई, इस विषय पर डा. अम्बेडकर का मत है कि वैदिक काल में कोई भी अछूत नहीं था। धर्मसूत्रों के काल में अपवित्रता अवश्य थी परंतु अछूतपन की धारणा का विकास नहीं हुआ था। अस्पृश्यता की उत्पत्ति के निश्चित समय की जानकारी चौथी शताब्दी में गुप्त नरेशों द्वारा गौ-वध को दंडनीय घोषित करने और गौ-मांसाहारी लोगों को अछूत कहे जाने से मिलती है।[55] महात्मा गांधी भी अस्पृश्यों की उत्पति के काल को एक ऐसा समय मानते हैं जब गौ वध पर प्रतिबंध लग गया था और जो गाय का मांस खाते रहे उन्हें समाज से तिरस्कृत किया गया। लेकिन गांधी ने इस काल को परिभाषित नहीं किया है। परंतु रामशरण शर्मा का मत है कि हीन व्यवस्थाओं, कार्यों और जातियों की गणना मूलतः मौर्य पूर्व काल में की जाने लगी थी, जिससे पता चलता है कि अस्पृश्यता संभवतः मौर्य पूर्व काल में आई।[56] इस आधार पर अछूतों की उत्पत्ति के दो मुख्य कारण पाए जाते हैं। पहला, घृणित पेशा, और दूसरा, आदिम जातियों का संस्कारविहीन जीवन। पहले दृष्किोण के अनुसार शारीरिक और मानसिक प्रवृत्ति से पंचम वर्ग की उत्पत्ति हुई जबकि दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार धार्मिक कारण अछूत वर्ग की उत्पत्ति में सहायक सिद्ध हुआ। अस्पृश्यता के काल निर्धारण में मतभेद के बावजूद यह अवश्य कहा जा सकता है कि अस्पृश्यता मौर्य पूर्व काल में आरंभ हो चुकी थी।

गांधी की दृष्टि में दलित जातियों से संबंधित मूल समस्या अस्पृश्यता-निवारण की थी। उनका यह दृढ़ मत था कि इन्हें जब तक सामाजिक समानता नहीं मिल जाती तब तक उनका आर्थिक और राजनीतिक उत्थान चाहे कितना भी किया जाए, अस्पृश्यता-निवारण संभव नहीं होगा। इसी कारण गांधीवादी दृष्टिकोण आर्थिक और राजनीतिक कल्याण से समस्या का समाधान नहीं मानता, बल्कि पहले सामाजिक पहलुओं पर विशेष ध्यान देने की बात करता है, क्योंकि गांधी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन को अलग-अलग टुकड़ों में बाँटकर उत्थान के समर्थक नहीं रहे हैं। दूसरा, गांधी की दृष्टि में अस्पृश्यता-निवारण और दलितों के भौतिक उत्थान

की समस्या केवल उन तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि यह सवर्ण हिंदू या संपूर्ण भारतीय समाज की समस्या थी। इसका समाधान न तो अनुसूचित जातियों के दृष्टिकोण से किया जा सकता था और न ही गैर-अनुसूचित जातियों के दृष्टिकोण से। तीसरा, गांधीवादी दृष्टिकोण का एक मूल तत्त्व यह भी है कि सामाजिक परिवर्तन विधान-निर्माण और ज़ोर-ज़बरदस्ती से नहीं लाया जा सकता। सामाजिक परिवर्तन सोच में बदलाव लाकर और अहिंसात्मक पद्धति से ही आ सकता है, क्योंकि ज़ोर-ज़बरदस्ती का प्रभाव केवल तात्कालिक होता है और परिस्थितियों के बदलने पर वह टूट सकता है, जबकि सामाजिक सहमति से परिवर्तन लाने में देर भले ही हो, परंतु उसका प्रभाव दूरगामी और स्थायी होता है। इसलिए गांधीवाद लोगों में सत्य, अहिंसा और नैतिक दृष्टिकोण के प्रचार-प्रसार से जन-जाग्रति उत्पन्न करने पर बल देता है।

दूसरी ओर, डा. भीमराव अम्बेडकर की दृष्टि में दलित जातियों की मूल समस्या वर्ण एवं जाति व्यवस्था से उत्पन्न अस्पृश्यता थी और इस प्रथा को आधार देने के लिए वे हिंदू धर्मशास्त्रों को दोषी मानते थे। उनकी दृष्टि में अस्पृश्यता से मुक्ति तब तक संभव नहीं थी जब तक वर्ण-व्यवस्था से उपजी जातिप्रथा और हिंदू धर्मशास्त्रों की एक सर्वमान्य पुनर्व्याख्या नहीं हो जाती। डा. अम्बेडकर के अनुसार अस्पृश्यता के व्यवहार के लिए हिंदू दोषी नहीं हैं बल्कि वे शास्त्र दोषी हैं जो जाति व्यवस्था की गलत शिक्षा देते हैं। उनकी दृष्टि में जब तक लोग धर्मशास्त्रों की सत्ता पर विश्वास करते रहेंगे तब तक उनके आचरण में परिवर्तन नहीं आएगा। इसलिए वह गांधी के सवर्णों के हृदय-परिवर्तन के कार्यक्रमों पर विश्वास नहीं करते थे। डा. अम्बेडकर का यह निश्चित मत था कि जब तक हिंदू धर्मग्रंथों की पुनर्व्याख्या के बाद एक सर्वमान्य ग्रंथ का निर्माण नहीं होता और पुरोहिताई के पेशे को योग्यता के आधार पर सभी वर्गों के लिए नहीं खोला जाता तब तक अस्पृश्यता से मुक्ति नहीं मिल सकती। दूसरा, डा. अम्बेडकर की दृष्टि में दलितों के शोषण, उत्पीड़न और उनके दीन-हीन होने का मुख्य कारण सवर्ण हिंदू अवश्य थे, परंतु इस समस्या के समाधान के लिए वे सवर्णों से भिक्षा-दान की अपेक्षा नहीं करते थे। उनकी दृष्टि में जब तक दलितों में आत्मबल और स्वयं संगठित होने की चेतना का विकास नहीं होगा तब तक सामाजिक परिवर्तन संभव नहीं होगा। उनके विचार से सामाजिक संरचना में जब तक क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं लाया जाता, तब तक भौतिक क्रांति का न तो कोई अर्थ होगा और न ही अस्पृश्यता से मुक्ति मिलेगी। इसलिए वह चाहते थे कि भारत के सामाजिक ढाँचे में मूल परिवर्तन लाने के लिए जातिविहीन समाज की स्थापना की जाए। दलित जातियों के आर्थिक और राजनीतिक उत्थान के लिए

उन्होंने संवैधानिक उपायों पर बल दिया और दलितों में आत्मविश्वास की चेतना से एक नए समाज के निर्माण की कल्पना की। परंतु सवर्ण रूढ़िवादी मानसिकता से लंबे समय तक संघर्ष करने के बाद निराश होकर उन्होंने अंतिम अवस्था में धर्मपरिवर्तन को जातिव्यवस्था और अस्पृश्यता-मुक्ति का साधन माना।

गांधी-अम्बेडकर की दृष्टि से अस्पृश्यता की समस्या और समाधान पर विचार करने के बाद यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता के बाद सरकारी कार्यक्रमों में न तो गांधी के रचनात्मक कार्यक्रमों को लागू किया गया और न ही डा. अम्बेडकर के दृष्टिकोण को अपनाने पर बल दिया गया। स्वातंत्र्योत्तर भारत में जातियों का आधुनिकीकरण, सांस्कृतीकरण और राजनीतिकरण अवश्य होता रहा, परंतु जातियों के टूटने और विलीन होकर नागरिक समाज बनने की जगह जातिवादी राजनीति को ही बढ़ावा मिलता रहा है।